।। तमसो मा ज्योतिर्गमय ।।

पुनरुत्थान कार्य अने विचार सन्देश

पुनरुत्थान ट्रस्ट के विचार एवं कार्य के प्रसार हेतु मासिक पत्रिका मूल्य रु. ३/–

प्रकाशन स्थल : पुनरुत्थान ट्रस्ट 'ज्ञानम्' ९ बी, आनन्दपार्क, बलियाकाका मार्ग, जूना ढोर बजार, कांकरिया, अहमदाबाद – ३८० ०२८

वर्ष : १० • अंक : ९ • चैत्र, शक संवत् १९४१ • युगाब्द ५१२१ • अप्रैल २०१९

सप्रेम नमस्कार ।

क्या आपने कभी सावधान होकर विचार किया है कि आपके पाँच–सात–दस–बारह वर्ष के बालकों का वजन या तो होना चाहिये उससे कम है अथवा अधिक है । वे मोटे हों या पतले, उनकी भोजन पचाने की शक्ति कम है, कार्यशक्ति कम है । वे भारी काम तो कर ही नहीं सकते, हल्के काम भी एकाध घण्टे की अवधि तक भी कर नहीं सकते । आप जरा निरीक्षण करें कि उनका लगातार कितना समय बिना किसी दवाई खाये बीतता है । यह शारीरिक दुर्बलता चिन्ताजनक है । इसके साथ साथ मानसिक दुर्बलता भी है । वे स्थिर नहीं बैठ सकते, विचार नहीं कर सकते । इन दो कारणों से उनका चरित्र विकास नहीं हो सकता क्योंकि वे प्रेरणा भी नहीं ग्रहण कर सकते । सद्गुण और सदाचार की अपेक्षा करना भी कठिन हो गया है ।

जीवन में कुछ सिद्धान्त, कुछ लक्ष्य, कुछ मूल्य होते हैं इसका उन्हें न ज्ञान है, न भान ।

ये ऐसे हैं उसके कारण क्या हैं ? पहला कारण है उनका अयोग्य ाहार । जो खाना चाहिये वह वे खाते नहीं हैं, नहीं खाना चाहिये उसे खाने की जिद करते हैं । घर में या बाजार में उन्हें शुद्ध और पौष्टिक आहार मिलता नहीं है । बाजार में शुद्ध सामग्री मिलती नहीं है । क्या खाना, कितना खाना, कैसे खाना, कब खाना, क्यों खाना इसकाखाने वाले को ज्ञान और भान नहीं है और घर में विद्यालय में या घर से बाहर सिखाने वाला भी कोई नहीं है । खिलानेवाले को भी कोई सुध नहीं है ।

बालकों को चरित्रवान कैसे बनाना इसका विचार करना मातापिता ने छोड दिया है । इस स्थिति में बाल, किशोर, युवा सब दुश्चरित्र बनते हैं और उनका बना समाज असंस्कारी ही बनता है । हमारी नई पीढी की यात्रा असंस्कारिता की ओर दुर्बलता की ओर ही हो रही है ।

स्थिति चिन्ताजनक है । तो उपाय क्या है ? मातापिताओं को करबद्ध निवेदन है कि

- बच्चों को प्लास्टिक की बोतलों और पात्रों में खाने और पीने न दें । प्लास्टिक स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है । उसी प्रकार एल्यूमिनियम कभी उपयोग न करें ।
- भोजन बनाते समय प्रेशर कुकर, मिक्सर ग्राइन्डर, माइक्रोवेव, फ्रिझ आदि का सुविधा के नाम पर उपयोग हम करते तो है परन्तु वह स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है । स्वास्थ्यकी बलि चढकर सुविधा की चाह रखना बुद्धिमानी तो नहीं है ।
- डेरी का दूध, भैंस का दूध, जर्सी का दूध, दहीं, मक्खन, छाछ, घी वास्तव में वर्जित होना चाहिये । इन सबके माध्यम से हम किस छलावे के शिकार हुए हैं यह हम नहीं जानते । जिन्हें अपने बच्चों की चिन्ता है वे इन सबके बारे में जानने का अवश्य प्रयास करें और अपने बच्चों को बचायें ।
- देशी गाय का दूध, दहीं, घी, गोमूत्र और गोबर, गोबक के कण्डे, उन कण्डों की राख हमारे नित्य उपयोग की वस्तुयें बननी चाहिये ।
- बजार में मिलनेवाला पेकिंग का खाना होटल का खाना वासीखाना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिये । बचपन से ही ऐसी आदत डालने की आवश्यकता है ।
- पन्द्रह वर्ष की आयु तक बच्चों को खूब खेलने दें । ऐसे खेल होने चाहिये जिनमें मिट्टी में रगडना हो, भागदौड और उछलकूद करना हो, चीखाना चिलाना हो और खूब हँसना हो । पसीना बहना अनिवार्य है ।

ऐसी सब बातों से हम ही अपने बच्चों को वंचित रखते हैं । यह उनका और उनके साथ अपना भी दुर्भाग्य है । हम स्वयं ही सावधानी बरतकर अपने आपको और बच्चों को बचा सकते हैं ।

इति शुभम् ।

सम्पादक

शिक्षक और शिष्य

मेरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है – 'गुरुगृह–वास' । शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती । शिष्य को बाल्यावस्था से ऐसे व्यक्ति (गुरु) के साथ रहना चाहिए, जिनका चरित्र जाज्वल्यमान् अग्नि के समान हो, जिससे उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के समान रहे । हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता आया है । ज्ञान–दान का भार पुनः त्यागियों के कंधों पर पड़ना चाहिए । गुरु के लिए दूसरी आवश्यक बात है – निष्पापता । बहुधा प्रश्न पूछा जाता है, 'हम गरु के चरित्र और व्यक्तित्व की ओर ध्यान ही क्यों दें ?' यह ठीक नहीं है । अपने कई आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि करने और दूसरों में उसका संचार करने का एकमात्र उपाय है – ह्रदय और मन की पवित्रता । गुरु को पूर्ण रूप से शुद्ध चित्त होना चाहिए, तभी उनके शब्दों का मूल्य होगा । वास्तव में गुरु का काम ही यह है कि वे शिष्य में आध्यात्मिक शक्ति का संचार कर दें, न कि शिष्य की बुद्धि–वृत्ति अथवा अन्य किसी शक्ति को उत्तेजित मात्र करें । यह स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि गुरु से शिष्य में सचमुच एक शक्ति आ रही है । अतः गुरु का शुद्ध चित्त होना आवश्यक है । गुरु को शिष्य की प्रवृत्ति में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए । सच्ची सहानुभूति के बिना हम अच्छी शिक्षा कभी नहीं दे सकते ।

(भारतीय शिक्षा ग्रंथमाला, ग्रंथ ४)

धर्म और संस्कृति

एक विवेचन

ले. रंगा हरि

(गतांक से आगे)

इसके विपरीत सेमेटिक पंथीय यहूदी, ईसाई, इस्लामी समाजों में इस प्रथा का पूर्णतः अभाव है । पहले तो वहाँ एक भी स्त्री–देवता नहीं । पुरुषों को तो जहोआ, अल्लाह, क्रिस्त, जीसस ये नाम देना देवनिन्दा मानी जाती है । श्रद्धा से क्यों न हो यदि किसी ने उस प्रकार किया तो उसको सजा दी जाती है । इतिहास उसका साक्षी हैं आश्चर्य कहो, विडम्बना कहो अंग्रेजी में नामकरण के लिए जो शब्द है जिसका अर्थ है 'क्रिस्तीकरण' । परन्तु क्रिस्तु (जीसस) का नाम किसी को नहीं दिया जाता । इसके पीछे के हेतु पर विचार करें ।

भारतोत्पन्न सभी पंथों की आस्था है कि नर नारायण बन सकता है । उसके लिए हर पंथ की दार्शनिक पदावली अलग है, फिर भी कल्पना समान है । अष्टांगमार्ग की सफल साधना से कोई भिक्षु बुद्ध बन सकता है, यह है भगवान् बुद्ध की वाणी । जैन, वैष्णव, सिक्ख सारे इसको सर्वोत्तम ध्येय मानते हैं । उस मंगल मनोकामना से उन पंथों के अनुयायी अपने देवताओं के नाम संतानों को देते हैं और चरितार्थता एवं गर्व का अनुभव करते हैं ।

सेमेटिक पंथियों का विचार और विश्वास भिन्न है । वहाँ ईश्वर बनने का विचार छोड़ दो, ईश्वर को देखना भी सम्भव नहीं । चयनित पुत्र एवं पैगम्बर को भी देवदर्शन नहीं हुआ है । गगनस्थ सर्वेश को देखना, मिलना कयामत तक सम्भव नहीं । उस प्रकार के मोह में पड़ना अक्षम्य देवनिन्दा है । इस आस्था से प्रेरित निष्कर्ष है संतानों को देवता का नाम देना, देव की अवमानना है । अतः उदाहरण के लिए हम केरल में गानभूषण येसुदास को तथा कलामंडळ हरिदास को देख सकते हैं, किन्तु छोटे नाम के रूप में जब हरिदास को हरि पुकार सकते हैं, येसुदास को येसु नहीं पुकार सकते । बीस पचीस साल पूर्व पाकिस्तान में एक निष्ठवान मुसलमान ने अपने पुत्र का नाम अल्लाह रखा । जानकारी मिलते ही सरकारी अधिकारियों ने उस पिता को कठिन सजा दी और बेटे का नाम उसी पल बदलवाया । नामकरण सम्बन्धित, हिन्दू संस्कृति के इस अनोखेपन को हमें समझना होगा ।

देहावसान

उपर्युक्त नामकरण के दर्जे का दूसरा मुद्दा है देहावसान का । सेमेटिक एवं भारतीय आध्यात्मिक दर्शन दोनों, देहावसान के बाद मनुष्य की आत्मा की सद्गति का विश्वास करते हैं, परन्तु उसकी प्रक्रिया के सम्बन्ध में दोनों की कल्पना भिन्न है । सेमेटिक मजहबों के अनुसार विश्व के अन्तिमतम दिन पर उसकी सुनवाई प्रत्यक्ष खुदा द्वारा होगी तत्पश्चात् निर्णय घोषित किया जायेगा । सुनवाई के उस दिन तक मुरदे की आत्मा को कब्र में चिर विश्राम करना पड़ेगा ।

इस विचार से भिन्न है भारतीय दर्शन का विचार । भारतोत्पन्न सभी पंथ–संप्रदायों का विचार है कि आदमी के देहान्त से ही उसके कर्मों के अनुसार उसकी गति का निर्णय होता है । उसमें भगवान की भूमिका नहीं । गीता में स्पष्ट कहा है 'सर्वव्यापी परमेश्वर भी न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभकर्म को ग्रहण करता है' नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः (५–१५)

देहावसान सम्बन्धित ये दो अलग विचार मृत्यु का उल्लेख करते समय दो प्रकार से प्रगट होते हैं । भारत की सभी भाषाओं में मृत को स्वर्गवासी, कैलासवासी, दिवंगत, ब्रह्मलीन, परलोकप्राप्त आदि कहते हैं । आशा की जाती है कि मृत अपने सत्कर्मों के कारण बिना छोटे–बड़े अन्तराल के, स्वर्गस्थ हो । उसके लिए मराठी भाषा का प्रयोग 'देवाज्ञा झाली' और बंगाली प्रयोग चरमधाम प्राप्त अतिसुन्दर है । किन्तु अन्तिम दिन तक इन्तजार करनेवालों की भाषाओं में ये शब्द अकल्पनीय हैं, सम्भवतः निन्दक भी । अतएव किसी बिशप अथवा पादरी के देहावसान के बाद ईसाई लोग उनको दिवंगत के बदले काल कवलित कहते हैं ।

जाना नहीं, आना

ऊपर की कड़ी में देवाज्ञा की बात कही है । उसका तात्पर्य है मृत्यु अथवा देहावसान । देवाज्ञा होने पर भी मृत्यु को लोग पसन्द नहीं करते । ज्यादातर लोग उससे डरते हैं । मृत्यु का नाम लेना लोग अशुभ मानते हैं । उसको सूचित करने के लिए दूसरा शब्द लगाते हैं । मंगलूर की कोंकणी भाषा में 'मेल्लो' (मर गया) के लिए 'गेल्लो' (गया) कहते हैं । हिन्दी में भी साधारण 'वे नहीं रहे' कहते हैं । सीधा 'मर गये' कहना असभ्य माना जाता है । समस्त भारत की रीति यही है । शब्द प्रयोग की यह शिष्टता सामान्य जीवन में भी प्रचलित दिखती है ।

साठ–सत्तर साल पुराना प्रसंग । हमारे घर पर हमें मिलने के लिए संघ के प्रचारक आये । दो–तीन महीनों में उन्होंने २०–२५ मलयालम शब्द सीख लिये । जलपान के बाद वापस निकलते समय उन्होंने नानी की ओर देखकर मलयालम में 'मैं जाऊँ' कहा । तुरन्त नानी ने उनको रोका और कहा 'ऐसा मत कहो । मैं आऊँ कहो । जाना अच्छा शब्द नहीं । हम सब केवल एक बार ही जाते हैं ।' प्रचारक बहुत मिलनसार था, समझदार भी । सीढ़ी पर खड़े होकर उन्होंने कहा 'नानी, हमारी मराठी में भी ऐसा ही है । इसलिए हम लोग, विशेषतः संघ के लोग, कभी नहीं जाते, हमेशा आते हैं । मैं फिर आऊँगा ।' नानी खुश हो गयीं ।

यहाँ नानी के मुख से हिन्दू संस्कृति बोल रही थी । पूरे हिन्दुस्थान में विदा माँगते समय जानेवाला 'फिर मिलेंगे', 'फिर आयेंगे' कहता है । गुजराती में 'आउजो' और मराठी में 'मी एतो' ऐसा कहते हैं । भारत का अतिथि कभी नहीं जाता, वह सदा आता है । 'जाता' कहते समय, जैसे नानी ने कहा, उसमें अशुभ का संकेत है । विचार और कामना सर्वदा शुभसूचक

होना चाहिए । अंग्रेजी में 'बाय, बाय' कहकर विधिवश आखिर की 'गुड बाय' में न पड़ें, यह है यहाँ की संस्कृति की अपेक्षा ।

सन्तों की वाणियों में 'जाने का यह शब्द निस्संकोच आता है । किन्तु उसका प्रसंग अलग है । जब उनको दिव्यदृष्टि से अपने ऐहिक जीवन का अन्त दुष्टिगत होता है तब वे ईश्वरलीन होने की आतुरता से गाते हैं, 'मैं जा रहा हूँ अपने घर ।' किन्तु हम जैसे सामान्य लोगों के लिए पथ्य 'आना' नहीं । भारतीय संस्कृति की यह विशेष सीख है ।

अमर सन्तान

हिन्दू संस्कृति नर–नारी को पापी, पाप सम्भव, पापात्मा नहीं मानती । यहाँ स्वामी विवेकानन्द के १० सितम्बर, १८६३ के शब्द स्मरणीय है, 'एक वैदिक ऋषि ने संसार के सामने खड़े होकर तूर्य स्वर में आनन्द सन्देश की घोषणा की, 'हे अमृत के पुत्रों ! कैसा मधुर और आशाजनक सम्बोधन है यह ! बन्धुओं ! इसी मधुर नाम–अमृत के अधिकारी शब्द से आपको सम्बोधित करूँ, आप इसकी आज्ञा मुजे दें । निश्चय ही हिन्दू आपको पापी कहना अस्वीकार करता है । आप तो ईश्वर की संतान हैं, अमर आनन्द के भागी हैं, पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं । आप इस मर्त्यभूमि पर देवता हैं । आप भला पापी ? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है, वह मानवस्वरूप पर घोर लांछन है...।'

पश्चात् के दिनों में एक सत्संग में किसी एक महिला ने स्वामी जी से संशय व्यक्त किया था, 'स्वामीजी, क्या आदम ने आज्ञा–भंग का पाप नहीं किया था ?' प्रत्यस्त्र के समान उत्तर था 'बहिन जी, याद करो, ईश्वर ने जब आदम को बनाया वह निष्पाप निरंजन था ?' हिन्दू संस्कृति महिला को पाप का स्रोत नहीं मानती, वह है 'सर्वमंगल मांगल्या ।'

आसेतुहिमालय

प्राचीनकाल से हमारे पूर्वजों ने इस भारतवर्ष को विविधताओं के बावजूद अखण्ड भूखण्ड माना । उसके कारण संस्कृत भाषा में 'आसमुद्र समुद्रपर्यन्ताया एक राष्ट्र' की परिभाषा प्रचलित हुई । वही भाव विष्णुपुराण में 'उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं । वर्ष तद्भारतं नाम, भारती यत्र संन्ततिः' इस श्लोक से अभिव्यक्त हुआ । भारत की अन्य सभी भाषों में भारत की अखण्डता सम्बन्धित वह भावना मुहावरे–कहावत के रूप में प्रकट हुई मानो वह हमारी सांस्कृतिक धरोहर बन गयी । तमिल में 'इमय मुदल कुमारि वरै' सदियों से प्रचलित मुहावरा है, जिसका अर्थ है हिमालय से कन्याकुमारी तक। भाषाओं में 'आसेतु हिमाचल', 'हिमवत्सेतु पर्यन्तम्' सुन्दर साहित्यिक वाणी प्रयोग हैं । सन् १६६२ में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया, तब भारत की सभी भाषाओं में भाषायी कविवरों ने इसी प्रकार का सहारा लेकर भावभीनी कविताएँ रचीं । आम जनता को लगा कि कविवर अपने ही ह्रदयभाव को उजागर कर रहे हैं । समग्र भारत का वर्णन एकमात्र श्लोक में समेट कर 'मातृलहरी' नामक कविता में कविश्रेष्ठ श्रीधर वर्णेकर ने गाया 'रत्नाकराधौतपदां, हिमालयकिरीटिनीं । विन्ध्यकाञ्चीसरिन्मालां, वन्दे भारत मातरम्'।।१।। इसी को वर्तमान में तीसरी पंक्ति के पाठभेद से (ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां) विद्या भारती के तीस सहस्र विद्यालय प्रार्थना में गाते हैं ।

हिन्दू संस्कृति की कई विशेषताओं को जिज्ञासुओं के सम्मुख रखने का विनम्र प्रयास यहाँ किया गया है । विषय पूरा हुआ, इसका दावा करना धृष्टता होगी । क्योंकि हिन्दू संस्कृति इतनी पुरानी है कि उसका आद्यान्त खोजना सम्भव नहीं । यह है हिन्दू संस्कृति का छोटा–सा विहंगम चित्र जो यथामति खींचा गया ।

उपसंहार

अन्त में, संस्कृति भी धर्मवत् मानव जाति की विशेषता है । वह नर के अन्दर जो वानर है, उसको संस्कारित कर नरेन्द्र बना देती है । हर देश की जनता उस देश की संस्कृति को गढ़ती है । अति विपुला इस धरती में बाहर की परिस्थितियाँ प्रकृत्या हर देश की संस्कृति को अलग आकार देती हैं । अतः ऊपर से संस्कृतियाँ भिन्न दिखती हैं । किन्तु विश्व के हर व्यक्ति के अन्दर सुलगती मानवता संस्कृतियों को एकात्म करती हैं । ऋग्वेद की वाणी में, 'एक ही अग्नि अनेक तरह से प्रदीप्त होती हैं । एक ही सूर्य सबमें प्रविष्ट होकर अनेक तरह से प्रकट होता है ।' अर्थात् संस्कृतियाँ मूलतः एक हैं, अनेक नहीं ।

संस्कृतियाँ नदी के समान हैं । सभी नदियों का गन्तव्य महासागर है । उसी प्रकार सभी संस्कृतियों का गन्तव्य एक ही है – विश्व कल्याण । उसका स्मरण सतत रखते हुए इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक नदी का संगमस्थान अलग है । वह उसके उद्भव, भूतल और गति पर निर्भर है । उसके कारण नदी की वैयक्तिक पहचान अलग है; जैसे गंगा, नर्मदा, ब्रह्मपुत्र । संस्कृति की भी हालत यही है । जल प्रवाह के नाते नदी–नदी में भेद नहीं, तो भी निसर्गवश विशेष नामकरण की विवशता होती है । धर्मरक्षक अवतार के नाते राम और कृष्ण एक हैं, फिर भी युग और युग की माँग के अनुसार भिन्न हैं; राम, राम है और कृष्ण, कृष्ण हैं । उसी प्रकार संस्कृतियाँ मूलतः अभिन्न होते हुए भी लौकिक व्यवहार में भिन्न हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दू संस्कृति और अन्य संस्कृतियाँ भिन्न मानी जाती है । इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर ही संस्कृतियों की सही अवधारणा सम्भव होगी । उसके लिए 'विभक्त में अविभक्त को देखने का' भावात्मक दृष्टिकोण हमें भगवद्गीता से प्राप्त होता है ।

वास्तव में हमारे दृष्टाओं के अनुसार पूरब–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण का वर्गीकरण निरर्थक है। पुरानी लोककथा याद आती है। दो तपस्वी नैमिषारण्य में विशाल वटवृक्ष की छाया में मिले । एक ने दूसरे से पूछा 'पूरब कहाँ है ?' दूसरे ने कहा 'पश्चिम के पश्चिम में ।' उन्होंने उलटा पूछा 'पश्चिम कहाँ है ?' उस ओर से उत्तर आया 'पूरब के पूरब में ।' दोनों ने अट्टहास से कहा 'जय प्रभु, जय प्रभु' और एक साथ हिमालय की ओर बढ़े । अन्तिम विश्लेषण में गोलाकार पृथ्वी का पश्चिम कहाँ, पूरब कहाँ ? इस परमार्थ भाव से हमें संस्कृतियों को अवगत करना होगा । तभी निर्वैर सामञ्जस्य का अमृतानुभव हमें प्राप्त होगा ।

•

पुनरुत्थान विद्यापीठ द्वारा आजोजित

ज्ञानसाधना वर्ग ३

पुनरुत्थान विद्यापीठ द्वारा विद्यापीठ के अहमदाबाद स्थित कार्यालय में ज्ञानसाधना वर्ग ३ का आयोजन किया गया था । यह वर्ग ७ दिन का अर्थात् फाल्गुन कृष्ण पक्ष ४ से एकादशी तक– २५/३/२०१९ से ३१/०३/२०१९ तक था।

इस वर्ग में १३ प्रतिभागी थे, जिस में डोम्बिवली से शरद धर्माधिकारी, दिलीप केळकर, प्रकाश करमरकर, दीपक कुलकर्णी ; औरंगाबाद से वृन्दा देशपांडे, वर्षा देशपांडे; पुणे से विनया पुंडे, चित्रा मोहरीर, अजित जगताप, लक्ष्मण मोहरीर; जेसलमेर से ब्रजमोहन रामदेव एवं राजकोट से परागभाई बाबरीया उपस्थित थे ।

वर्ग में सुश्री इंदुमतिजी काटदरे, मा. श्रीकांत काटदरे, लक्ष्मणजी मोहरीर, ब्रजमोहनजी रामदेव और श्री दिलीप केळकर का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ । इस वर्ग के चार आयाम थे, जिसमें भारतीय ज्ञानधारा, भारतीय शिक्षा, भारतीय जीवनद्रष्टि एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्यमें भारत की भूमिका का समावेष था । वर्ग में प्रतिभागियों ने विभिन्न सत्रों में विषय प्रस्तुति की ।

वर्ग का समय प्रातः ७ बजे से रात्रि के ९ बजे तक था, जिस में कार्य का विभाजन इस प्रकार रहा ।

एकात्मता स्तोत्र	–	श्रीमति विनया पुंडे
सूत्र संचालन एवं सूचना	–	श्री लक्ष्मण मोहरीर
यातायात	–	श्री पराग बाबरिया
निवास	–	वर्षा देशपांडे
भोजनविभाग कार्यसेवा	–	चित्रा मोहरीर
परिवेशन दायित्व	–	वृन्दा देशपांडे

यह वर्ग सभी प्रतिभागियों के लिये ज्ञानवर्धक रहा। विषय प्रतिपादन का अनुभव, भारतीय ज्ञानधारा, उपनिषद बोध एवं पुनरुत्थान की उद्देश पूर्ति के लिये आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त हुआ । इस वर्ग में कार्य सेवा स्वरूप भारतीय शिक्षा ग्रन्थमाला, चिति के अंक, कुटुम्ब शिक्षा ग्रन्थ, भारतीय संस्कृति वाचनमाला, धर्मपालजी की के विभिन्न पुस्तकों में से विविध ग्रन्थ, पुस्तिका एवं लेखों के लिये विषयसूची बनाई गई ।

पुनरुत्थान विद्यापीठ का एक अभिनव आयोजन

देश के युवाओं को देश के लिए कुछ करना चाहिए । भारत युवाओं का देश हैं, इसलिए युवाओं से अपेक्षा करता हैं । देश के शिक्षित, बुद्धीमान, संस्कारवान, कतृत्ववान युवाओं के लिए पुनरुत्थान विद्यापीठ द्वारा मई मास के अन्त में एक शिबिर का आयोजन किया गया हैं । जिन्हें इस शिबिर में सहभागी बनने की आकांक्षा है, उनके लिए शिबिर की जानकारी प्रस्तुत हैं ।

शिबिर का नाम : राष्ट्र सर्वोपरि

स्थान : श्री सरस्वती शिशु मंदिर, शनाळा रोड, मोरबी

समय : दि. ०१ जून से ०५ जून २०१९, दि. ०१ जून सुबह ५ बजे तक स्थान पर पहुँचना हैं । और वापसी यात्रा के लिए ०५ जून शाम ६ बजे के बाद आरक्षण करवाना उचित रहेगा ।

वय मर्यादा : ३५ वर्ष

उपस्थिति : ५०

विषय : १. भारत को जानें, २. विश्व की वर्तमान स्थिति, ३. भारत की वर्तमान स्थिति, ४. भारत और विश्व के संकटों के निवारण में युवाओं की भूमिका

विषयों के मार्गदर्शन हेतु देश के श्रेष्ठ विद्वज्जन पधारेंगे । उत्तम सामग्री भी प्राप्त होगी । शिक्षा, निवास, भोजन आदि सब निःशुल्क रहेगा । अनुशासन, विनय, प्रामाणिकता और समझदारी शिबिर मे प्रवेश हेतु अनिवार्य योग्यतायें रहेगी ।

यदि आप इसमें सहभागी बनना चाहते हैं तो पंजीकरण करना अनिवार्य हैं । १० मई, २०१९ से पूर्व निम्न कडी पर पंजीकरण अवश्य करें । https://goo.gl/cJs3FV

अन्य किसी जानकारी या सुझाव के लिए पराग बाबरिया – ९४२७२३७७१९ पर info@punarutthan.org या पर संपर्क करें ।

कुटुम्ब शिक्षा : कार्यशाला वृत्त

संपूर्ण विश्व में कुटुंबव्यवस्था भारत कीही विशेषता है । व्यष्टी से समष्टि का गठन कुटूम्ब मे ही संभव है । परन्तु आज शिक्षा का अभाव, अज्ञातना एवं विपरित दिशा के कारण कुटुंबशिक्षा का समग्रता में अध्ययन करना आवश्यक बात हो गयी है । इसीलिये संस्कार पुनरुत्थान मंच द्वारा थाने जिले के भिवंडी–लोढाधाम मे त्रिदिवसीय कार्यशाला का आयोजन हुआ था । १५ से १७ मार्च २०१९ तक यह निवासी कार्यशाला थी ।

मनुष्य जीवन की गर्भावस्था शिक्षाव्यवस्था, बालअवस्था, किशोरअवस्था, युवा/तरुण अवस्था, प्रौढावस्था एवं वृद्धावस्था इन सात महत्वपूर्ण अवस्थाओं का आयु के अनुसार विभाजन, प्रमुख लक्षण, क्षमतायें और विकास दिशा इन बिन्दुओं को लेकर तात्विक एवं व्यावहारिक चर्चा

विश्लेषण किया गया । साथ में ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यस्ताश्रम यह चार आश्रमों के महत्वपूर्ण लक्षण एवं दायित्व का जीवन की अवस्थाओं के साथ सुंदर मिलाफ बिठाया गया । विनायासेन मरणम् । विनादैन्येन जीवनम् । साधने हेतु मनुष्यजीवन की सही पद्धति एवं मार्ग इस कार्यशाला मे समझ में आया । सभी विषय पुनरुत्थान विद्यापीठ की कुलपति श्री इंदुमतीजी काटदरे ने अपनी समर्थ एवं प्रवाही वाणी में रखे । प्रातःकाल हवन, बाद मे विषय प्रस्तुति और प्रश्नोत्तरी ऐसा तीन दिनो मे क्रम चला ।

कार्यशाला मे १६ सहभागी संख्या रद रही । ज्यादातर युवा और कुछ प्रौढ थे । सभी प्रभावित होकर इस विषय को स्वयं के जीवन मे उतारना और अन्यों को जाग्रत करना ऐसा संकल्प हरेक व्यक्तिने किया ।

कार्यशाला का उद्घाटन श्री पवन अगरवालजी ने किया । तथा समापन सत्र मे समाज से और भी लोग उपस्थित रहे । भोजनादि व्यवस्थाये अच्छी रही । कार्यशाला के संयोजक श्री शैलेशभाई भिंडे पुनरुत्थान विद्यापीठ के आचार्य परिषद के सदस्य थे ।

प्रज्ञा प्रवाह

लेखक : मुरली मनोहर जोषी

(गतांक से आगे)

कठिन-से-कठिन विषय को सरल शब्दों में, और ऐसे सहज भाव में जटिल-से-जटिल विचार वे समझा देते थे कि सामान्य व्यक्ति भी उसे अच्छी तरह समझ जाता था । बड़े-से-बड़े अधिवेशन में, आठ-आठ, दस-दस हजार कार्यकर्ताओं के समूह में, उलझे-से-उलझे विषय को जहां पंडित दीनदयाल जी ने स्पर्श किया, ऐसा लगता था मानो विषय निर्मल हो गया, स्फटिक भी भांति स्वच्छ हो गया, इसमें कहीं कोई उलझाव नहीं रहा, कहीं कोई जटिलता नहीं रही । लोग कहते थे - अरे, यह तो एक बिल्कुल सरल बात है, इतनी-सी सीधी बात हम पहले क्यों नहीं समझ पाये, वाह ! मेरे विचार से ऐसा तभी संभव होता है । जब उसमें और विचार में कोई अन्तर नहीं रहा जाता, तब वह उस तात्त्विक मीमांसा के हर पहलू को, उसके हर पक्ष को बड़ी सरलता से साथ, सबके सामने स्पष्ट कर सकता है ।

दीनदयाल जी पार्थिव रूप से अवश्य चले गये हैं, किन्तु विचार के रूप में वे अमर हैं । सामान्यतः लोग समझते हैं कि दीनदयाल जी ने किसी राजनीतिक दल के लिए एक विचारधारा दी । मैं ऐसा समझता हूं कि यह मूल्यांकन उनको बहुत सतही तौर पर देखना होगा । भारतीय जनसंघ के प्रारम्भ में ही डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कहा था - 'यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएं तो मैं इस सारे भारतीय राजनीतिक रंगमंच का नक्शा बदल दूं ।' ऐसी थी उनकी कर्म-साधना । पंडित जी का कर्तृत्व तो बहुत विशाल था, किन्तु इससे भी अधिक व्यापक था उनका जीवन-दर्शन । 'एकात्म मानववाद' के रूप में एक समग्र जीवन-दर्शन जगत को दीनदयाल जी की अद्भुत देन है ।

एकात्म मानववाद कोई एक नारे के रूप में विकसित नहीं किया गया था । यह कोई ऐसा नारा नहीं था कि 'धन और धरती बंट के रहेगी', या 'कमाने वाला खायेगा', इस प्रकार की कोई बात नहीं है । यह समूचे मानव-समाज का एकात्म रूप में दर्शन करने का एक अभिनव प्रयास है ।

मानव-समाज क्या है ? क्या यह मनुष्यों का समूह मात्र है ? कुछ व्यक्तियों की केवल एक भीड़ है ? दैवयोग से कुछ लोग एक साथ आ गये किसी ट्रेन के डिब्बे में या होटल में, या किसी बाजार में या किसी प्रदर्शन में, तो क्या ऐसे मनुष्यों के एकीकरण को समाज की संज्ञा दी जा सकती है ? या समाज की कोई निश्चित पहचान होनी चाहिये ? दीनदयाल जी ने यह बताया कि मानव-समाज का एक सावयव जीवमान तत्त्व है, इसे आप केवल जड़ में नहीं देख सकते, वरन् जैसे मानव-शरीर को आप एक जीवमान रूप में देखते हैं, सावयव रूप में देखते हैं, मानव-समाज को भी हमें उसी रूप में देखना चाहिए । यह कितनी अटपटी-सी बात है कि यदि हम किसी से पूछें कि क्या आप 'समाजवादी' हैं और वह उत्तर दे कि 'नहीं', तो तत्काल यह समझ लिया जायेगा कि बस यह तो 'पूंजीवादी' है, और यदि कोई 'पूंजीवादी' होने से इनकार कर दे तो सामान्यतः यह समझा जायेगा कि वह 'समाजवादी' है । प्रश्न है कि क्या इन दो के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं हो सकता ? एकात्म मानववाद मानव-समाज को केवल दो ध्रुवों के बीच में या दो विचारधाराओं के बीच में ही बांट देने का समर्थन नहीं है । सारे समाज को एक भिन्न दृष्टि से देखने के कारण एकात्म मानववाद समाज-रचना का एक अत्यन्त गतिशील प्रतिमान प्रस्तुत करना है ।

वस्तुतः हुआ यह था कि बहुत पहले हमारे देश के अनेक मूर्धन्य नेताओं का सम्पर्क यूरोपीय राजनीतिक आंदोलनों से हुआ । ऐतिहासिक कारणों से, वे राजनीतिक आंदोलन दो रूपों में विकसित हुए थे । फ्रांस की राज्यक्रांति के पश्चात् जो समूचे पश्चिमी जगत् में 'स्वतंत्रता', 'समता' और 'बंधुता' के विचार चले, उनमें 'स्वतंत्रता' पर आग्रह करने के कारण जनतंत्र और फिर केवल स्वतंत्रता के बारे में अधिक आग्रह के परिणाम-स्वरूप आर्थिक क्षेत्र में शोषण की भी स्वतंत्रता को मान्य करने वाले पूंजीवाद का भी विकास हो गया । समाज का ऐसा प्रतिमान (मॉडल) विकसित हो गया, जिसमें 'समता' या 'बंधुता' तो बिल्कुल नकार दी गयी और केवल स्वतंत्रता के नाम

पर अबाधित, अमर्यादित, उच्छृंखल स्वतंत्रता का जन्म हुआ। वह प्रतिमान आज भी विश्व के कुछ देशों में है।

दूसरी ओर केवल 'समता' पर बहुत अधिक आग्रह करने से 'स्वतंत्रता' और 'बंधुता' आंखों से ओझल कर दी गयीं। और फिर, समता में से समान वितरण, उत्पादन–प्रणालियों पर शासकीय एकाधिकार और अंततोगत्वा राजकीय ताानशाही का जन्म हो गया। किन्तु इन दोनों ने ही 'बंधुता' नामक तत्त्व को आंखों से पूरी तरह ओझल कर दिया इसलिए सारे पश्चिमी जगत् में प्रधान रूप से केवल दो ही विचारधाराएं पनप सकीं और परिणामतः एक ओर 'जनतंत्रवादी–पूंजीवादी' और दूसरी ओर 'समाजवादी तानाशाही' समाज–रचनाएं विकसित होती चली गयीं।

दीनदयाल जी के अनुसार इन दोनों से भिन्न एक ऐसा विकल्प भी हो सकता है जो व्यक्तियों को केवल राजनीतिक प्राणी या केवल आर्थिक प्राणी न मानकर तथा समाज को केवल किसी विशेष उत्पादन–प्रणाली का पिष्ट–पेषण करने वाला जनसमूह न मानकर, इसको एक जीवमान संकल्पना के रूप में ग्रहण करता है। इसलिए उन्होंने व्यष्टि और समष्टि के बीच में जो संबंध होना चाहिए, उसको भारतीय पृष्ठभूमि में परिभाषित करने का प्रयत्न किया। व्यक्ति क्या है ? यदि पश्चिम के विचारकों से पूछा जाये तो उनके यहां कालक्रम से 'व्यक्ति' की भिन्न–भिन्न परिभाषा की गयी है। किसी ने कहा कि व्यक्ति तो मात्र शरीर है और इसलिए यह शारीरिक एषणाओं का पुंज है। यदि आपने किसी प्रकार से भी इनकी संतुष्टि कर दी तो व्यक्ति सुखी हो जाता है। और समाज क्या है ? तो उत्तर मिलेगा कि वह विभिन्न व्यक्तियों में अपनी शारीरिक एषणाओं को पूर ाकरने के लिए एक समझौता मात्र है। साथ आना और मिलना और फिर उसके बाद एक विशेष आर्थिक प्रणाली का जन्म लेना–यही बस समाज–जीवन है, इसके आगे है ही क्या ? स्पष्ट है कि यह समाज–व्यवस्था का एकांगी प्रतिमान (मॉडल) है। कहीं विचारकों ने यह कहा कि 'व्यक्ति' मात्र एक धार्मिक अस्तित्व है, यह तो धार्मिक विचारों से अनुप्राणित होता है। संभवतः इससे कुछ कठमुल्लापन का, धार्मिक अंधविश्वासो का, मतांधता का एक विशेष दुराग्रह निर्मित हुआ और उसने भी विश्व में विनाश किया। कुछ ने कहा कि नहीं, व्यक्ति तो एक राजीतिक अस्तित्व है, इसकी कुछ विशिष्ट राजनीतिक आकांक्षाएं हैं, उनकी पूर्ति के लिए ही विभिन्न समाजों का उदय होता है इत्यादि–इत्यादि और साम्राज्यवाद उसमें से पैदा होता है।

भिन्न–भिन्न प्रकार से 'व्यक्ति' को परिभाषित करने के कारण, उसकी किसी एकांगी प्रवृत्ति को ही समग्र व्यक्ति मान लेने के कारण, अनेक प्रकार के विचार देखने में आते हैं।

फ्रायड ने भी एक प्रकार के 'व्यक्ति' को सामने रखा, उसने मानव की अधिकांश क्रियाओं और कार्य–व्यापारों का उद्गम उसकी ग्रंथियों के साथ जोड़ा और कहा कि व्यक्ति में जो वासनाएं हैं, उनसे ही वह अनुप्राणित होता है और वे ही उसे प्रेरित करती हैं। उसकी जो भी भावनाएं हैं, जो भी उसके अंदर प्रेरणाएं हैं, उन सबका उद्गम व्यक्ति के यौन–व्यवहार पर निर्भर है। फ्रायड ने व्यक्ति के इस रूप पर ही बल दिया।

कहीं–कहीं 'व्यक्ति' एक आर्थिक प्राणी के रूप में ही समझा गया। तब व्यक्ति और समाज का परस्पर संबंध उत्पादन–प्रणाली के आधार पर ही समझने का प्रयत्न किया गया। तो, तरह–तरह से व्यक्ति को परिभाषित करने के प्रयत्न किये गये और उन पर आधारित अनेक राजनीतिक–आर्थिक दर्शन प्रस्तुत किये गये। पर वे सभी अधूरे हैं। अब जिस प्रकार पश्चिम में जीवन–दर्शन उत्पन्न हुए हैं, जिस प्रकार एक संस्कृति का जन्म वहां हुआ है तो क्या वही एकमात्र संस्कृति है जो मानव–जीवन के लिए कल्याणकारी है, या उसके कुछ विकल्प भी हो सकते हैं ? दीनदयालजी ने वैज्ञानिक एवं दर्शनिक आधार पर एक विकल्प हमारे सामने प्रस्तुत किया। इससे पहले कि वे इस विचार के प्रत्येक पक्ष को अपनी भाषा में, अपनी वाणी में, अपनी रीति से लोकप्रिय बना पाये होते, वे काल के क्रूर प्रहार से असमय ही हमारे बीच से चले गये। आज आवश्यकता है कि हम उस एकात्म मानववाद के सभी पक्षों पर विचार करें, उस पर गहराई से चिंतन करें और यह देखें कि किस प्रकार वह आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक जीवन्त दर्शन के रूप में मानवीय समस्याओं का निराकरण कर सकता है।

एकात्म मानववाद के अनुसार, व्यक्ति केवल शरीर नहीं है, बल्कि भारतीय विचारकों के तारतम्य में व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। क्योंकि समष्टि व्यक्तियों से मिलकर बनती है, इसलिए उसमें भी इन तत्त्वों का किसी–न–किसी रूप में दर्शन होना चाहिए। इसलिए समष्टि के लिए भी देश, जन, संस्कृति और चिति की आवश्यकता है। व्यष्टि–समष्टि–संबंधो की इस व्याख्या में चिति को ठीक से समझना महत्त्वपूर्ण है।

समाज–रचना के संबंध में दीनदयाल जी की चिति की अवधारणा एक श्रेष्ठ देन है। स्थूल रूप में यदि आप कहें तो जैसे व्यक्ति का एक आत्मा है, वैसे ही समाज का भी कोई आत्मा है, उसमें भी कोई चैतन्य भाव है और इस चिति का प्रकटीकरण, इसका सम्यक् रूप से अनुभव ही किसी समाज को स्वस्थ एवं गतिमान बनाता है। यह चिति ही उसका विराट रूप प्रदर्शित करती है, यही समाज को ठीक प्रकार से संचालित कर सकती है, उसके ताप को ठीक प्रकार से नियंत्रित कर सकती है और समाज की समाज रूप में अपनी स्थिति बनाये रखने में समर्थ करती है। जैसे आत्मा एक भावात्मक संबोध है, वैसे ही चिति भी एक भावनात्मक संबोध है। उसको आप यदि स्थूल रूप में पकड़ना चाहें, मुट्ठी में बंद करना चाहें, तो कठिन होगा। किन्तु बिना आत्मा के मनुष्य की कल्पना भारतवर्ष में करना तो कठिन है। इसी प्रकार समाज की भी चिति का, चैतन्य तत्त्व का, समाज के रूप में रहने की

(आगे पृ. ८ पर)

परिवार गोष्ठि

इन्दुमति काटदरे
अनु. सुधा करंजगावकर

स्वदेशी विचार : सब का कल्याण

कर्णावती में एक अम्बिका मिल है । महानगरपालिका की बस वहाँ से गुजरती है तब अम्बिकानगर नामक बस स्टेन्ड आता है ।

वहां अम्बिका मिल में काम करनेवाले कामदार उतरते हैं । वे कहते रहते है – चलो उतरो , अमरिका आ गया ..... वास्तव में तो अमरिका जा सकते नहीं हैं इसलिये अम्बिकानगर को अमरिका का नाम दे कर मानसिक सुख एवम् सन्तोष जताने का !

साडी का एक पोत अमेरिकन ज्यॉर्जेट कहलाता है । न तो वह अमरिका में बना है , कि न तो वह ज्यॉर्जेट है । स्तर की दृष्टि से देखा जाय तो वह सामान्य एवम् सस्ता कपडा है ।फिर भी अमेरिकन शब्द जोडकर कुछ महेंगा, मूल्यवान पहननेका मानसिक सन्तोष लेने का !

... ससुराल अथवा कोई सगे सम्बन्धी अमेरिका में अथवा अन्यत्र विदेश में रहते हैं यह बात कितने गौरव की बात मानी जाती है ।

... मुजे गुजराती भाषा ठीक से नहीं आती है , हिन्दी बोलने की आदत नहीं है ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं होता है । परन्तु मुजे अंग्रेजी बोलना नहीं आता ऐसा कहने में बडे बडे महारथियों को भी शर्म की अनुभूति होती है । अंग्रेजी आती है, अंग्रेजी पर प्रभुत्व है ऐसा कहने में बडे बडे स्वदेशीपरस्त लोग भी प्रकट अथवा प्रच्छन्न गौरव का अनुभव करते हैं ।

... फॅशन में न समजनेवाले , ग्राम्य शिष्टाचार निभानेवाले लोगों को 'देशी बलून' कहा जाता है !

... कोई युरोपिअन – भले ही वह अर्धनग्न हो– दिखाई देता है तो मुँह फाड कर उसे देखते रहना ! अंग्रेजी आती हो अथवा नहीं फिर भी उसके साथ बात करने का प्रयास करने का !

... कपडे एवम् चीजवस्तुओं की पसन्दगी में 'इंग्लीश कलर' की पसन्दगी का अर्थ है अभिजात रुचि और लाल, पीले, नीले जैसे भारतीय रुचि के रंग संयोजनों की पसन्दगी का अर्थ है ग्राम्य रुचि ! वास्तव में पश्चिम के रंग संयोजन भी और कौन से रंगों में से होते हैं ?

... भोजन के समय जमीन पर बैठकर, पालथी मारकर हाथ से खाने वाले से छरी काँटे से , चम्मच से डाइनींग टेबल पर बैठ कर अथवा खडे खडे भोजन करने वाले 'हाई सोसायटी ' के लोग कहे जाते हैं !

... नीचे बैठ कर पढना गरीबी की निशानी मानी जाती है , टेबल खुर्सी और बेन्च डेस्क लेकर पढाई करना आवशयक माना जाता है ।

... सुबह उठ कर दातुन करने वाला ग्राम्य माना जाता है, ब्रश,पेस्ट का उपयोग करनेवाला अभिजात कहा जाता है ।

... बरतन साफ करने के लिये राख का उपयोग करनेवाला पिछडा हुआ और बाजार में मिलने वाला पावडर उपयोग में लेने वाला अभिजात माना जाता है ।

... घर की रोटी , परोठा खा कर नास्ता करना पिछडापन है , ब्रेड,बिस्किट, पेस्ट्री खाने वाले आधुनिक एवम् समृद्ध है !

... किसी के मृत्यु के अवसर पर ,अथवा आश्रम में , कथा श्रवण के लियेजाते समय ,अथवा कार्यकर्ता के रूप में जाते समय धोती–सदरा पहनते है तो ठीक है , परन्तु ऑफिस में , पार्टी में, विवाह के अवसर पर अथवा जहाँ सब सुट्बुट पहनकर आते हों वहाँ तो शर्ट पेन्ट अथवा कोट पेन्ट, बुट पहने बिना चलेगा ही नहीं ।

... घर में प्लास्टिक , एक्रेलिक, पोलिफाईबर, सिन्थेटिक रंग , वॉलपेपर्स, सिमेन्ट कॉंक्रिट का प्रयोग – ये सब कहाँ से आया ? क्यों आया?

... घर के बगीचे में विलायती गुलाब, लीली, क्रोटन्स,विलायती मेंहदी कहाँ से आये ? रेल्वे स्टेशनों पर थर्मोकोल एवम् प्लास्टिक के कप कहां से आये ?

... घर की रचना का मॉडेल भारतीय वायुमान को अनुकूल न होने पर भी आज है ऐसा कैसे हो गया ? पहेराव अस्वास्थ्यकर कैसे हो गया ? खानपान अस्वास्थ्यकर कैसे हो गया ?

... क्रिकेट के खेल के पीछे पागल हो जाने की मनःस्थिति का निर्माण कैसे हुआ ?

... देशी औषधियों के प्रति श्रद्धा की भावना नहीं पर विलायती दवायें मानो रामबाण औषध ।

इस सूची को तो कितनी भी लम्बी की जा सकती है।

यह सब क्याहै? विदेशी विषलता इतनी व्यापक रूप से फैल गई है एवम् उसकी जडें इतनी गहरी हो गई हैं कि हमारे ध्यान में ही नहीं आता है कि हमारे छोटे से छोटे व्यवहार, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार एवम् रवैये में , प्रतिभाव एवम् अभिगमों में हम विदेशी जीवनविचार का अनुसरण करते हैं ।

उपर प्रस्तुत किये गये उदाहरण जैसे उदाहरण सर्वत्र देखने को मिलते हैं । हम सब की जीवनचर्या में देखने को मिलते हैं हमने उन्हें इतनी हद तक स्वीकार कर लिया है कि वह हमारे स्वभाव का एक अंग बन गये है । ऐसा भी हो सकता है कि यह सब विदेशी मूल का है , दासता की मानसिकता का परिणाम है ऐसा कहनेवाले पर हम गुस्सा हो जाय,उसके बचाव में कई तर्क करें। हमारी बुद्धिशक्ति का उपयोग उसको बचाने के लिये करें। हमारे बौद्धिक तो इन सब का बचाव करने के लिये वैश्विक नागरिकता की उंची बात करेंगे । अपनाही अच्छा है ऐसा मानना यह तो कूप मंडूकता है ऐसा कहेंगे । अच्छातो विश्वभर में से लेना चाहिये । ऐसा कहेंगे । विशाल द्रष्टिबिन्दु अपनाने की सलाह देंगे । जड, रूढिवादी, अठारहवीं शताब्दी के .... ऐसी तो कई गालियाँ देंगे ! (अठारहवीं शताब्दी में तो युरोप में अंधकारयुग था भारत में नहीं। भारत में तो १७५७ के प्लासी के युद्ध के साथ स्वातन्त्र्य संग्राम का श्री गणेश हुआ था । परन्तु ..... अठारहवीं शताब्दी के ..... यह गाली भी विदेशी ही है !)

(क्रमशः)

Publish on 15th Every Month
RNI No. GUJHIN/2009/30610 GAMC-1764/2019-2021
ISSUED BY SSP VAILID UP TO 31-12-2021
PERMITTED TO POST AT AHD. PSO ON 15th EVERY MONTH

(पृष्ठ ६ से आगे) **प्रज्ञा प्रवाह**

इस नैसर्गिक इच्छा का अनुभव करना ही संभव होगा, किन्तु उसको पकड़कर किसी एक स्थूल रूप में दिखा पाना कठिन होगा । दीनदयाल जी का यह विश्लेषण था कि इस सामाजिक चेतना को, इस चैतन्य को यदि समाज में नहीं बनाये रखा जाता तो समाज अपनी सारी मूल प्रकृति को खो बैठता । अतएव व्यष्टि का नैसर्गिक संबंध परस्पर सहयोग का है । व्यक्ति के आत्मा और समाज की सामूहिक चेतना का साक्षात्कार ही सच्चा जीवन–दर्शन प्रदान करेगा ।

कई बार हम लोग उनसे पूछते रहते थे कि पंडित जी, संस्कृति क्या होती है ? वे बड़े ही सरल ढंग से समझा देते थे, कि 'भई देखो, प्रकृति तो बिल्कुल बोधगम्य है । मनुष्य को भूख लगती है – यह उसकी प्रकृति है । दूसरे के साथ बांटकर खाना चाहिए – यह इस भूख लगने वाली नैसर्गिक प्रकृति का एक विकास है – मानवी समाज को स्वस्थ रखने के लिए, इसको ठीक करने के लिए; यही संस्कृति है । दूसरे से छीनकर खा जाओ, यह विकृति है । यदि व्यक्ति अपने आत्मा और विश्वात्मा का अनुभव करता है तो वह संस्कृति की ओर स्वभावतः ही चल पड़ता है ।' इसलिए पंडित जी कहते थे कि व्यष्टि और समष्टि का सम्यक् संबंध होना चाहिए । व्यक्ति यदि सूक्ष्म है तो समष्टि विराट् है । व्यष्टि यदि बूंद है तो समष्टि सागर है ।

शिक्षा के बारे में वे यह बताते थे कि भई, शिक्षा वह प्रणाली है, वह प्रक्रिया है, जिससे कोई समाज अपने सदस्यों को अपने अनुरूप ढालता है । इसलिए शिक्षा व्यष्टि और समष्टि का संबंध जोड़ने वाला प्रमुख तत्त्व है । शिक्षा वह प्रक्रिया है जिससे समष्टि अपने आपको पुनरुत्पादित करती है, अपने लिए योग्य नागरिक बनाती है और नागरिक शिक्षित होकर अनपे समाज के लिए उपयोगी बनने की चेष्टा करता है तथा आवश्यकतानुसार उत्तम समाज का निर्माण भी करता है ।

(क्रमशः)

सुभाषितानी

काकस्य गात्रं यदि कांचनस्य माणिक्यरागो यदि चंचुदेशे
एकैक्पक्षे ग्रथितं मणिनां तथापि काको न तु राजहंस ।।

कौवे के सभी अवयव सुवर्ण के हो, और उसकी चोंच भी लाल माणिक्ययुक्त हो, उसके एक एक पंख पर मणि गूँथे जाय फीर भी कौवा कभी राजहंस नहीं बन सकता ।

मनुष्य उच्च कोटिका तभी बन सकता है यदि उसके अंदर मूलभूत रूप से अच्छे गुन विद्यमान है। अंदर से दुर्गुणयुक्त मनुष्य चाहे बाह्य रूप से कितने भी आभूषण धारण करता है अथवा अच्छा दिखने का प्रयास करता है, फिर भी वह अच्छा नहीं बन सकता है । जैसे बाह्य भक्ति करने से कोई संत नहीं बन सकता और मात्र जोर देकर बोलने से कोई शूरवीर नहीं बन सकता है ।

अंक प्रतिमास दिनांक १५ को प्रेषित किया जाता है । दिनांक २५ तक न मिलने पर सूचित करें । शेष बचा होने की स्थिति में नया अंक प्रेषित किया जायेगा ।

संरक्षक
डा. भानुभाई कीकाणी

प्रधान सम्पादक
इन्दुमति काटदरे (०९४२८८२६७३१)

व्यवस्थापक
विपुल रावल (९९७९०९९१४२)
व्यवस्थापकीय एवं सम्पादकीय पत्रव्यवहार विपुल रावल के नामसे करें । लिफाफे पर 'पुनरुत्थान सन्देश' अवश्य लिखें ।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	३०.०० रु.
पंचवार्षिक	१२५.०० रु.
पन्द्रह वार्षिक	३०० रु.
शुभेच्छक	१००० रु.
एक अंक	३.०० रु.

यह पत्रिका आपको उपयोगी और पठनीय लगती है तो सदस्यता शुल्क भेजने और भिजवाने की कृपा करें । शुल्क धनादेश अथवा चेक से अथवा खाते मे जमा करवा शकते है । खाता नंबर कार्यलय में से प्राप्त किजीये ।

प्रकाशक : पुनरुत्थान ट्रस्ट
चित्रकार : अजित वाघेला
मुद्रक : साधना मुद्रणालय ट्रस्ट

प्रेषक :
पुनरुत्थान ट्रस्ट
'ज्ञानम्' ९ बी, आनन्दपार्क, बलियाकाका मार्ग,
जूना ढोर बजार, कांकरिया, अहमदाबाद–३८० ०२८
दूरभाष : ०७९–२५३२२६५५
ई मेल : indumatikatdare@gmail.com
वेबसाईट : www.punarutthan.org

पुस्तप्रेष | मुद्रित सामग्री

प्रति,

Printed and Publirhed by **INDUMATI KATDARE** on behalf of **PUNARUTTHAN TRUST** and Printed at **Sadhana Mudranalaya Trurt,** 55/14 City Mill Compound, Outride Raipur Darwaja, Ahmedabad-380 022 and publirhed from 9/B, Anand Park, Baliyakaka Marg, Old Dhor Bayar, Kankaria, Ahmedabad-380 028
Editor : **INDUMATI KATDARE**